RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 48, अंक : 6 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 23 मई, 2021

विक्रमी सम्वत् 2078, सृष्टि सम्वत् 1960853122

दयानन्दाब्द : 197 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–48, अंक : 6, 20-23 मई 2021 तदनुसार 10 ज्येष्ठ, सम्वत् 2078 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

लोकोऽयं कर्मबन्धनः (कर्मप्रधान जहान)

लेo-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत्।।
-ऋ० ७।३२।१३

शब्दार्थ-**अखर्वम्** = क्षुद्रतारहित **सुधितम्** = सुचिन्तित **सुपेशसम्** = सुन्दर रूप-रेखा वाला **मन्त्रम्** = मन्त्र, गुप्त परिभाषित विचार **यज्ञियेषु** = यज्ञयोग्य, यज्ञ के अधिकारियों में **आ** = पूर्णरूप से **दधात** = डालो। **पूर्वीः+चन** = पूर्व से प्राप्त **प्रसितयः** = बन्धन **तम्** = उसको **तरन्ति** = लाँघ जाते हैं, छोड़ जाते हैं, **यः** = जो **इन्द्रे** = परमेश्वर के निमित्त **कर्मणा** = कर्म से **भुवत्** = समर्थ होता है।

व्याख्या-पता है, पाप क्या होता है? कुकर्म क्या होता है? मनु महाराज ८।८२ में कहते हैं-**नानृतात्पातकं परम्**-झूठ से बढ़कर गिराने वाला [पाप] कोई नहीं है। पातक कहो, पाप कहो, एक बात है। पातक जितने हैं, प्रायः उनमें दूसरों के साथ सम्बन्ध अवश्य होता है। हिंसा, जब तक हिंस्य न हो, नहीं हो सकती। बोलना दूसरे के साथ होता है, मिथ्या=बोलने में भी दूसरे की, श्रोता की आवश्यकता पड़ती है। चोरी पराये माल की होती है। ब्रह्मचर्य-नाश=मैथुन में भी दूसरा चाहिए। दूसरा न हो, तो अभिमान क्या और किसके आगे करें!

पाप के आचार से पहले पाप का विचार होता है। विचार अपने मन में होता है, उसको वाणी से उच्चार कर दूसरों तक पहुँचाते हैं। वेद कहता है-विचार हर एक को न दो किन्तु '**दधात यज्ञियेष्वा**' = जिनमें परोपकार-भावना है, यज्ञ-भावना से जो भावित हैं, ऐसे सदाचारी धर्मात्मा सज्जनों को विचार दो।

किन्तु वह मन्त्र=विचार अखर्व हो=क्षुद्र न हो। क्षुद्र विचारों से संकीर्णता उत्पन्न होती है, उससे स्वार्थ उत्पन्न होकर समाज-भावना का विनाश होता है। उच्चाशय के भावों से भरपूर विचार ही संसार के लिए कल्याणकारक होते हैं। साथ ही वह सुधित=सुचिन्तित होना चाहिए। ऐसा नहीं कि जो विचार आया, झट से उच्चारण कर दिया। नहीं, उसे सोचिए, उसके अनुकूल-प्रतिकूल सारे पहलुओं पर गम्भीरता से विचार कीजिए। जिसको विचार देने लगो, देख लो कि उसने इसे भली-भाँति धारण कर लिया है, समझ लिया है? अन्यथा, यह अपनी अधम बुद्धि से हानि करेगा। जब कोई विचार देने लगो, उसकी भाषा ललित हो, उसके समझाने का ढंग मनोहारी हो। उसे इस रूप में जनता के आगे रखो जिससे वह स्वयं आकृष्ट हो। सुन्दरता सभी को प्रिय है। भगवान् भी सत्य और शिव होते हुए सुन्दर हैं। वेद के शब्दों में भगवान् स्वः=सु+अस्=सुन्दर सत्तावान हैं। भगवान् ने इस सृष्टि में कितना सौन्दर्य भर दिया है! यह जहान कितना रूपवान् बनाया! तुम क्यों कुरूप सृष्टि रचो? तुम्हारी सृष्टि भी सुन्दर होनी चाहिए।

जब किसी को विचार देने लगते हैं, तब वे कर्म हो जाते हैं। कर्मों को अनेक ज्ञानी बन्धन का हेतु मानते हैं। कुछ सीमा तक यह बात है भी सत्य। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग आदि अधम योनियों में पड़े, ज्ञान-प्रकाश से रहित हुए विवशता का जीवन बिता रहे हैं और नाना दुःख पा रहे हैं, यह क्यों? जब इन्हें कर्म की स्वतन्त्रता थी, तब इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करके कुकर्म किये, उसका फल यह वर्त्तमान दुर्दशा है। कर्म से बन्धन मिला, कर्म ही से वह कटेगा, अतः वेद कहता है-

पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत्।।

पहले के बन्धन उसे छोड़ते हैं, जो प्रभु के निमित्त कर्म से समर्थ होता है।

वासना बन्धन का कारण है, जो सांसारिक वासनाओं से वासित होकर कर्म करेगा, वह बन्धन में पड़ेगा, अतः सांसारिक वासनाओं को त्यागो। अब जो कर्म करो, प्रभु के निमित्त करो, अर्थात् अपने-आपको भगवान् का हथियार बना लो। अब सब इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, अभिलाषाएँ छोड़ दो, जो प्रभु कराये, वह करो। प्रभु के कराने से कर्म होने की एक पहचान है-ऐसा कर्मकर्त्ता हानि-लाभ से विचलित नहीं होता, क्योंकि उसे विश्वास होता है कि प्रभु जो करते हैं, भला करते हैं। जाने, प्रतीयमान हानि में कोई गहरा लाभ छिपा हो! वेद जीवनभर कर्म करने का ही नहीं, कर्म करते हुए जीने की इच्छा का आदेश करता है, यथा-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।
-य० ४०।२

इस संसार में मनुष्य आयुभर कर्म ही करता हुआ जीने की इच्छा करे। इस भाँति तुझमें कर्म लिप्त नहीं होंगे, अर्थात् बन्धन का कारण नहीं बनेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है।

यहाँ कुकर्म और अकर्म का निषेध किया जा रहा है। कर्म किये बिना रहना प्राणी के लिए सर्वथा असम्भव है। ऐसी दशा में प्राणी को अपना कर्त्तव्य विचारना चाहिए। उसका विचार करके उस पर आरूढ़ हो जाए। कर्त्तव्य-ज्ञान वेद से होगा। वेद भगवान् की वाणी है। वेदानुसार कर्म करने वाला मनुष्य यह सोचे कि मैं प्रभु के आदेश का पालन कर रहा हूँ। ऐसी निष्ठा-भावना से कर्म करने वाला सचमुच भगवान् का करण=उपकरण बन जाता है।

प्रभु-निमित्त कर्म को निष्काम कर्म भी कहते हैं। अपना आपा भुलाये बिना यह लगभग क्या, सर्वथा असम्भव है। अपना आपा भुलाना=आत्मविस्मरण, आत्मसमर्पण के बिना अशक्य है। कर्म की महिमा बतलाते हुए भी वेद का सङ्केत उसी ओर है। कोई है जो इस सङ्केत को ग्रहण करे! **धन्यः सः, धन्या च तदीया जननी।**

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

मनुष्य की मृत्य व जन्म के बीच की स्थिति

ले.-डा. सत्यदेव 507-गोदावरी ब्लाक, अशोका सिटी कृष्णा नगर-मथुरा

सामान्यतः हर सर्वसाधारण मनुष्य जन्म से मृत्यु तक की दशा को देखते ही हैं और जानते भी हैं। परन्तु यह अत्यन्त विचारणीय विषय है कि मृत्यु के उपरान्त जीव के आगामी जन्म तक के बीच की क्या स्थिति होती है? इसको सामान्य व्यक्ति नहीं जानता, क्योंकि उसे इस विषय में सामान्य ज्ञान भी नहीं होता। वेदवाणी के माध्यम से परमपिता परमात्मा जीवात्मा के कल्याण के लिए इस विषय को समझाने का उपदेश देते हैं। इस विषय में वेद ही परम प्रमाण है, क्योंकि यह वेद का वचन है, ईश्वर की वाणी है। वेद को आधार मानकर ही ऋषि-महर्षियों और आप्त-पुरुषों ने इस समस्या पर अपने-अपने ग्रन्थों में प्रकाश डाला है।

मनुष्य का जन्म केवल रोटी-कपड़ा-मकान आदि आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं हुआ है, अपितु सत्कर्मों के करने के माध्यम से दुःख से पूर्ण छुटकारा अथवा मुक्ति पाने के लिए मानव शरीर मिला है। भौतिक पदार्थों का उपयोग एक साधन के रूप में करना है, मनुष्य जीवन का असली उद्देश्य तो साध्य (परमतत्व) को प्राप्त करना है। यही बात यजुर्वेद के 40वें अध्याय के 14वें मन्त्र में इस प्रकार कही गई है-

'विद्यांच अविद्यांच यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।''

अर्थात्,

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ-साथ जान लेता है, वह अविद्या-कर्मोपासना-पदार्थविद्या के ज्ञान से मृत्यु को पार करके विद्या-यथार्थ ज्ञान-तत्वज्ञान से मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा ने मनुष्य को जीवन जीने के लिए अनेक साधन दिये हैं, अब हर मनुष्य पर निर्भर करता है कि वह उन साधनों का उपयोग कैसे करता है, जैसे चाकू एक साधन है उसके उपयोग से डॉक्टर किसी रोगी को जीवन-दान देता है तो उसी चाकू से दूसरा मनुष्य किसी के प्राणों का हरण भी कर लेता है। सब निर्भर करता है चाकू के उपयोगकर्ता पर, कि वह चाकू का सदुपयोग करे या दुरुपयोग।

अब आइये मूल विषय पर विचार करते हैं कि 'मृत्यु और जन्म के बीच जीव की क्या गति होती है? इसके उत्तर में शास्त्रीय प्रमाण के आधार पर दो गतियाँ सामने आती हैं। कठोपनिषद् के अनुसार मनुष्य शरीर में स्थित यह 'देही' (जीवात्मा) जब शरीर में से सरकने लगता है और शरीर का त्याग कर देता है, तब यह शरीर मिट्टी हो जाता है और 'मृत' कहलाता है। मरण-धर्मा शरीर न प्राण से और न अपान से जीवित रहता है, अपितु इन दोनों से भिन्न 'आत्मा' से यह शरीर जीता है। उस 'आत्मा' पर ही ये दोनों-प्राण तथा अपान आश्रित हैं, टिके हुये हैं। आगे यमाचार्य अपने शिष्य गौतमवंशीय नचिकेता को गुह्यसनातन ब्रह्म के बारे में कहते हैं कि मरने के बाद आत्मा की जो गति होती है, उसे सुन-

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनु संयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।(कठो. 5/7)

अर्थात्,

मृत्यु के उपरान्त जिस जीवात्मा का जैसा कर्म और जैसा ज्ञान होता है, उसके अनुसार जीवात्मा भिन्न-योनियों में (परमेश्वर की व्यवस्थानुसार) जाकर, नया शरीर धारण कर लेती है तथा कुछ जीवात्मायें वृक्षादि स्थावर योनियों को प्राप्त होती हैं।

पं. जगदेव सिंह सिद्धान्ती के मतानुसार 'स्थाणु' शब्द का अर्थ वृक्षादि स्थावर योनि करना ठीक नहीं है, क्योंकि जो विद्वान् स्थाणु शब्द का अर्थ वृक्षादि स्थावर शरीर मानते हैं तो उक्त मन्त्र के पूर्वार्द्ध में यह बात कही जा चुकी है कि वे योनि को प्राप्त हो जाते हैं तो फिर इसके उत्तरार्द्ध में 'योनि' शब्द का कुछ भी वर्णन नहीं, अपितु 'स्थाणु' शब्द दिया गया है, परन्तु स्थाणु शब्द का अर्थ वृक्ष का ठूँठ या वृक्ष अर्थ करना ठीक नहीं, अपितु ईश्वर उचित है, क्योंकि ईश्वर ही एक अणु-अत्यन्त सूक्ष्म चेतन तत्व है, जो कि गति रहित है। अतः वह गति रहित होने से स्थाणु कहा गया है। इसके साथ यह बात भी है कि जो साधक/मनुष्य मुक्ति के उपाय करके परमानन्द को प्राप्त करते हैं, उनका वर्णन न तो कठोपनिषद् के इस मन्त्र में निर्दिष्ट है और न अन्यत्र ही। इसका अभिप्रायः है कि इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में ऐसे मनुष्यों/साधकों/सन्तों का वर्णन किया गया है जो कि अपनी साधना, तपस्या, ज्ञान और श्रेष्ठ कर्मो के अनुसार परमेश्वर रूपी मोक्षानन्द को प्राप्त करते हैं अतः कठोपनिषद् के अनुसार मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की दो गतियाँ होती हैं:-

1. प्रथम गति-जीवात्मा परमेश्वर की व्यवस्थानुसार अपने-अपने कर्म का फल भोगने के लिये भिन्न-भिन्न योनियों में जाकर जन्म लेता है।

2. दूसरी गति-पुण्यात्मायें अपने-अपने ज्ञान, कर्म और त्याग-तप-उपासना के द्वारा मोक्ष (मुक्ति) को प्राप्त करती है।

इसी प्रकार ईश्वरीय व्यवस्थानुसार जीवात्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरी योनि के शरीर को धारण करता है। इस सन्दर्भ में बृहदारण्यक उपनिषद् के 4/3 मन्त्र के अनुसार-

''तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रमसमाक्रम्यात्मानमुपसँहरति
एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याऽविद्यां गमयित्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसँहरति।।''

अर्थात्,

जैसे तृण-जलायुका-सुण्डी-तिनके के अन्त पर पहुँचकर, दूसरे तिनके को सहारे के तौर पर पकड़कर, अपने-आप को खींच लेती है, इसी प्रकार यह आत्मा इस शरीर रूपी तिनके को परे फैंक कर, अविद्या को दूर कर, दूसरे शरीर रूपी तिनके का सहारा लेकर अपने आपको खींच लेता है।

अतः ईश्वर किसी भी जीवात्मा को सामान्यतः वेघर (बिना शरीर दिये) नहीं रहने देता। कुछ विशेष मामलों में कुछ जीवात्मायें अपने पुण्य-कर्मों के कारण ईश्वर (परमात्मा) को अत्यन्त प्रिय हो जाती हैं तो वे मुक्ति की अधिकारी हो जाती हैं और वे सीधे ईश्वर के धाम, आनन्दधाम को प्राप्त हो जाती हैं। वे वहाँ जाकर स्वेच्छा पूर्वक विचरण करती हैं। इसमें यजुर्वेद के 32वें अध्याय का 10वाँ मन्त्र यही बता रहा है-

''स नो बन्धुर्जनिता स विधाता, धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानाः, तृतीये धामन्नध्यैरयन्तः।।''

अर्थात्,

हे मनुष्यों! वह ईश्वर हम लोगों का बन्धु के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक (जनिता), वह हमारे सब कार्यों को पूर्ण करने हारा (विधाता), सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर को जानने वाला है और जो सांसारिक सुख-दुःख से रहित (तृतीये), नित्यानन्दयुक्त मोक्ष स्वरूप (धामन्), धारण करने वाले परमात्मा में (अमृतम) मोक्ष को प्राप्त होकर (आनशानाः), विद्वान् लोग (देवाः) स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हैं (अध्यैरयन्त)।

फिर भी कुछ जीवात्मायें ऐसी होती हैं, जो इस जन्म में परमेश्वर की प्रिय-पात्र तो हुईं, किन्तु मोक्ष की अधिकारी नहीं हुई, उन्हें परम दयालु परमात्मा अपनी अत्यन्त अनुकम्पा से यजुर्वेद के 39वें अध्याय के 6वें मन्त्र के अनुसार मोक्ष प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते हैं। मन्त्र इस प्रकार हैं:-

''सविता प्रथमेऽहन्नग्नि द्वितीये वायुस्तृतीयऽआदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः।
पंचमऽऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे।
मित्रो नवमे वरुणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वेदेवा द्वादशे।।''

अर्थात्,

प्रथम सूर्य, द्वितीय अग्नि, तीसरे वायु, चौथे आदित्य, पाँचवें चन्द्रमा, छठे ऋतुओं, सातवें मरुत, आठवें बृहस्पति, नवमे मित्र, दसवें वरुण, ग्यारवें इन्द्र और बारहवें समस्त देवों में जीवात्मा को परमात्मा (ईश्वर) भ्रमण कराता है, इसलिए कि अगली मनुष्य योनि में जाने से पूर्व वे इनसे गुणों को ग्रहण कर सकें और अपना आगामी जीवन इस प्रकार का बना सकें, ताकि वे मोक्ष के अधिकारी हो सकें।

कोई भी जीवात्मा एक जन्म में मुक्ति (मोक्ष) की अधिकारी नहीं बन पाती। अनेक जन्मों के संचित पुण्य-कर्मों के फल स्वरूप ही जीवात्मायें मुक्त-अवस्था को परान्तकाल तक के लिए प्राप्त होती हैं।

जीवात्मा जब साधन चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति-शम-दम-उपरति-तितिक्षा-श्रद्धा-समाधान) और मुमुक्षुत्व अपनाकर, अनुबन्ध चतुष्टय (अर्थात् वेद विषय के अधिकारी तथा ब्रह्म जीव सम्बन्ध के ज्ञाता बनकर, सब शास्त्रों के

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय

वैदिक संस्कृति के पुनर्रूत्थान में आर्य समाज का योगदान

आर्य समाज की स्थापना से पूर्व वैदिक संस्कृति का अस्तित्व लगभग समाप्त हो चुका था। लोग अपनी संस्कृति और सभ्यता से विमुख हो चुके थे। हमारी संस्कृति जो वेदों पर आधारित थी, जिसे वैदिक संस्कृति के रूप में जाना जाता था। वेदों के नाम पर अनेक प्रकार के पाखण्ड समाज में फैले हुए थे। बलि प्रथा, मूर्ति पूजा, बाल विवाह, अशिक्षा के कारण समाज कुरीतियों के जाल में जकड़ा हुआ था। वेदों का नाम लेकर पाखण्ड़ियों ने अपनी दुकानें चला रखी थी और अपनी उदरपूर्ति का साधन बना रखा था। यही कारण था कि महात्मा बुद्ध के अन्दर वेदों के प्रति घृणा उत्पन्न हुई और उन्होंने वैदिक संस्कृति को त्यागकर बौद्ध संस्कृति को स्थापित किया।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वैदिक संस्कृति के पुनर्रूत्थान के लिए आर्य समाज नामक संस्था का निर्माण किया जो अपने स्थापना काल से वेदों के प्रचार प्रसार के लिए संकल्पबद्ध है। आर्य समाज के बिना वेद का प्रचार नहीं हो सकता और वेद प्रचार के बिना आर्य समाज का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। वेद के महत्व को ध्यान में रखते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के तीसरे नियम में लिखा कि- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आर्य समाज जिस आधार पर खड़ा है उसका मुख्य आधार वेद है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना धर्म ही नहीं परम धर्म बताया है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं कि अगर परमात्मा वेद का प्रकाश न करे तो कोई मनुष्य कुछ भी नहीं बना सकता। वेद परमात्मा की वाणी है। इसी के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए। वेद की आज्ञा के अनुसार चलकर ही मनुष्य का जीवन सफल हो सकता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से पहले वेदों के अर्थों का अनर्थ किया गया था। वेदों के नाम पर यज्ञों में पशुओं की बलियां दी जाती थी। तरह-तरह के घिनौने कृत्य किए जाते थे। वेदों के बारे में लोगों के मन में तरह-तरह की भ्रांतियां फैली हुई थी। तथाकथित ब्राह्मणों के सिवाय अन्य किसी को भी वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। स्त्री और शूद्रों को बिल्कुल भी अधिकार नहीं था। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने गुरू विरजानन्द जी से आर्ष शिक्षा प्राप्त करके ऐसी बुद्धि को प्राप्त किया जिसके आधार पर उन्होंने वेदों के अर्थ किए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने हमें जगाया कि वेदों में कहीं पर भी पशुओं को मारने का विधान नहीं है। महर्षि दयानन्द ने वेदों का सही अर्थ करके लोगों को जगाया। आर्य समाज वेद प्रचारक संस्था है। समाज में जितना-जितना हम वेद प्रचार का कार्य करेंगे उतना ही आर्य समाज की उन्नति होगी। आर्य समाज के सार्वभौम सिद्धान्त वेदों से ही लिए गए हैं। वेदों में किसी एक व्यक्ति के हित की नहीं अपितु सारे संसार के कल्याण की कामना की गई है। वेदों की शिक्षाएं सार्वभौम हैं।

आर्य समाज की स्थापना करने के पश्चात महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के जो दस नियम बनाए, उनमें उन्होंने अपना लक्ष्य निर्धारित करते हुए छठे नियम में लिखा कि- संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। वेद में कहा गया है कि संसार को उन्नत करो। यह नियम ऐसा अद्‌भुत और अनोखा है जो संसार के किसी संगठन में नहीं पाया जाता। प्रत्येक समाज अपने समान विचार वाले लोगों को प्रमुखता प्रदान करता है। जैसे मुसलमान और ईसाई अपने-अपने सम्प्रदाय की स्थापना करके उसका विस्तार करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसके विपरीत वैदिक धर्म संसार के लिए है। संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज किसी एक देश या जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं । एक आर्य के लिए आर्य समाज के सदस्य ही नहीं अपितु संसार के दूसरे व्यक्ति, व्यक्ति ही नहीं सम्पूर्ण प्राणीमात्र सहानुभूति, दया और प्रेम के पात्र हैं। जहां दूसरे सम्प्रदायों में व्यक्ति प्राणियों को मार कर खा जाते हैं वहां वैदिक धर्म में बलिवैश्वदेव यज्ञ द्वारा उनकी रक्षा और पालन पोषण का विधान है और यह बलिवैश्वदेव प्रत्येक वैदिक धर्मी का नित्य कर्म है। यह नियम बिल्कुल पूर्ण है और इस नियम से सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का संदेश मिलता है।

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति कहकर महर्षि दयानन्द ने उपकार को भी निश्चित कर दिया है। अन्य मत और सम्प्रदायों में विशेषकर शारीरिक उन्नति पर ध्यान नहीं दिया जाता। उनके विचार में धर्म का सम्बन्ध स्वर्ग की बातों से है। परन्तु वे भूल जाते हैं कि हमारा शरीर आत्मा का रथ है और रथ के बिना यात्री अपनी मंजिल पर नहीं पहुंच सकता। शरीर ही लौकिक और पारलौकिक उन्नति का साधन है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं तो आत्मा कभी अपने गंतव्य स्थान पर नहीं पहुंच सकेगा। ऋषि दयानन्द धर्म में शारीरिक उन्नति को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं क्योंकि दुर्बल मनुष्य प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता। शारीरिक उन्नति के पश्चात आत्मिक उन्नति है। जिस समय मन सहित समस्त इन्द्रियां आत्मा के वश में हो जाती है तथा अधर्म, पाप, दुर्गुण, अविवेक नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म, सत्य, विद्या, आस्तिकता का प्रचार होता है। आत्मिक उन्नति के द्वारा ही मनुष्य सामाजिक उन्नति कर सकता है। जिस प्रकार पक्की नींव वाला भवन दृढ़ और मजबूत होता है इसी प्रकार शरीर से मजबूत और शक्तिशाली तथा आत्मिक गुणों से विभूषित मनुष्यों के समूह से जिस समाज का निर्माण होगा वह भी उन्नत और शक्तिशाली होगा।

वैदिक संस्कृति एक सार्वभौम संस्कृति है। वैदिक संस्कृति ही संसार की वरणीय संस्कृति हो सकती है। इस नियम में सामाजिक शब्द संकुचित अर्थ में प्रयुक्त न होकर विशुद्ध और विशाल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सामाजिक शब्द धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और समाज सम्बन्धी सभी क्षेत्रों के लिए प्रयुक्त हुआ है। वैदिक राजनीति की दृष्टि से विश्व एक राष्ट्र होना चाहिए और विश्व में चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना हो जावे तो समस्त अशान्ति और भय शीघ्र दूर हो जाएं। वैदिक आर्थिक दृष्टिकोण भी अत्यन्त सुन्दर है कि किसी के धन का अपहरण करने का प्रयत्न मत करो। इस एक ही शिक्षा से संसार के सारे संघर्ष और झगड़े समाप्त हो सकते हैं। अतः परस्पर समान भाव से सब की सब प्रकार की उन्नति करने में तत्पर रहो। वैदिक संस्कृति में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं है। स्वतन्त्र भारत में आर्य समाज की आवश्यकता पहले से भी अधिक है। आर्य समाज को अपनी बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रित करके वेद की इन दिव्य भावनाओं को और महर्षि के दिव्य स्वप्न को साकार रूप देने के लिए प्राणपन से जुट जाना चाहिए। तभी आर्य समाज संसार का कल्याण कर सकता है और संसार को शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करने के लिए प्रेरित कर सकता है।

आज पूरा विश्व कोरोना महामारी के कारण त्राहि माम, त्राहि माम कर रहा है। कोरोना के इस दौर में लोग मानवीय संवेदनाओं को भूल चुके हैं। ऐसी अनेकों घटनाएं दिन प्रतिदिन देखने को मिल रही हैं जहां पर लोग अपने ही परिवार के सदस्य का पार्थिव शरीर लेने से इन्कार कर रहे हैं, कहीं पर कोई व्यक्ति अकेले ही कंधे पर शव लादकर अन्तिम संस्कार कर रहे हैं। कहीं पर नदियों में शव तैरते हुए दिखाई दे रहे है, चील, कौवे, गिद्ध, कुत्ते लाशों को नोच रहे हैं। ऐसी भयावह परिस्थितियों में हमें अपनी संवेदनाओं को जिन्दा रखना होगा। कोरोना का दौर तो निकल जाएगा परन्तु आपके द्वारा किया गया व्यवहार हमेशा याद रखा जाएगा। हमारी संस्कृति हमें वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को अपनाने का संदेश देती है। आर्य समाज अपनी वैदिक संस्कृति के अनुसार ही कार्य करता है। आज इस कोरोना महामारी के दौर में भी आर्य समाज इन्हीं सिद्धान्तों पर चलकर मानवता के कल्याण के लिए कार्य कर रहा है।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

सत्य से प्रभु की प्राप्ति

ले.-कृष्णा चौधरी, फ्लेट नम्बर 202, ब्लाक बी गोल्डन सैंड ढकोली, पंजाब

वेद हमें ज्ञान-कर्म और उपासना की सही दिशा दिखाते हैं।

परन्तु उपनिषद् ज्ञान काण्ड की ज्योति से हमारे जीवन को प्रकाशित करवाते हैं;

क्योंकि उपनिषद् हमारी प्राचीन सभ्यता के, धार्मिक शक्ति के हैं परम आधार।

इनके स्वाध्याय-चिन्तन-मनन से जीवन में आता है अनोखा निखार।।

साथ ही इनके ज्ञान से अन्तस् में

प्रेरणा उत्साह व नवजीवन का होता है संचार।

उत्साह व नवजीवन के संचार से तन-मन व आत्मा में सुखों की

शक्ति मिलती है अपार।।

उपनिषद्कार का कहना है कि-

संसार के सम्पूर्ण प्रवाह में,

ब्रह्म ही ब्रह्म समाया है।

जो प्राणी ऐसी महान् सत्ता की

अणु-अणु में देख लेता छाया है।।

उसके मस्तिष्क में समुद्र जैसी शक्ति और तन सितारों की तरह हो जाता है प्रकाशमान।

फिर वह साधक ब्रह्म की शक्ति से प्रकाशमान होकर अपनी सभी समस्याओं का कर लेता है समाधान।

आईये! हम भी उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी जीवन शैली को सितारों की तरह प्रकाशित करें:-

इस समय हम श्वेताश्वतर उपनिषद् का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस उपनिषद् को शुरु करते समय उपनिषद्कार ने लिखा है-

एक बार कुछ ब्रह्मनिष्ठ इकट्ठे होकर विचार करने लगे कि संसार की उत्पत्ति का क्या कारण है?

सृष्टि का कारण ब्रह्म है या कोई और, वे सोचने लगे कि-

हम कहां से उत्पन्न हुए हैं और किस से जीते हैं, किस की व्यवस्था में बन्धे हुए हैं और सुख-दु:ख क्यों भोग रहे हैं?

ऋषियों ने ध्यान योग से इस विषय पर विचार करना आरम्भ कर दिया कि-

1. कुछ लोग सृष्टि की उत्पत्ति का कारण काल व समय को मानते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि समय आ गया था-वक्त का फेर है।

तभी तो कोई वस्तु गर्मी में होती है, कोई सर्दी में, कोई वर्षा में। इसलिये समय ही संसार का कारण है।

2. कुछ लोगों का कहना है कि निर्माण का कारण स्वभाव भी हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है। जैसे- जल के स्वभाव में शीतलता होती है परन्तु आग में गर्मी होती है। इसलिये सृष्टि के निर्माण का कारण स्वभाव भी हो सकता है।

3. कुछ लोगों का मत है कि सृष्टि बनाने का कारण भाग्य है, क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम जो कुछ करना चाहते हैं, वैसा नहीं होता। तभी तो प्राय: कहा जाता है Man Proposes and God disposes.

4. कुछ लोग कहते हैं कि सृष्टि शुरु से ऐसी ही चल रही है। इसका कोई उद्देश्य ही नहीं है।

5. कुछ लोगों के अनुसार सृष्टि केवल पंच महाभूतों से बनी है।

6. कुछ विद्वानों के अनुसार नर-नारी के कारण ही सृष्टि का निर्माण हुआ है।

7. कईयों का विचार है कि सृष्टि का नियम संयोग के कारण ही हुआ है।

8. इन सब कारणों का आपस में विचार विमर्श करते हुए ऋषि-मुनियों ने विचारा कि-

समय-स्वभाव-भाग्य-पंच महाभूत सृष्टि के निर्माण का कारण नहीं हो सकते, क्योंकि ये सब तो जड़ हैं। फिर जड़-जड़ का निर्माण कैसे कर सकता है?

स्त्री पुरुष भी सृष्टि की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकते-क्योंकि उन्हें भी सुख-दुख दोनों ही प्राप्त होते हैं। फिर अपने आप को सुख तो सब कोई देता है, भला दु:ख क्यों देने लगा?

जब वे ब्रह्मज्ञानी इस प्रकार की चर्चा द्वारा कुछ भी निर्णय न कर सके तो...

अन्त में उन्होंने उस समय ध्यान योग से विचार करना शुरू किया तो उन्होंने क्या देखा?

यह देखा कि परमात्मा की दिव्य शक्ति जो अपने गुणों के कारण छिपी हुई है-

वही सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है।

यह ब्रह्म की दिव्य शक्ति किसी सीमा में बंधी हुई नहीं है, अपितु इस शक्ति ने ही सारी सृष्टि को अनुशासन में रखा हुआ है।

योग ध्यान द्वारा ब्रह्मज्ञानियों ने फिर देखा कि यह जो सृष्टि है, यह तो ब्रह्म द्वारा चलाया गया एक चक्र है।

फिर उन्होंने सृष्टि में एक चक्र की कल्पना की-

चक्र का अर्थ है पहिया। पहिया हमेशा गति ही करता रहता है अर्थात् अपनी परिधि पर ही घूमता रहता है। इस परिधि में तीन अरे होते हैं।

ऋषि जी समझाते हैं कि-

जिस प्रकार पहिये में तीन अरे होते हैं, उसी प्रकार प्रकृति में भी सत-रज-तम तीन गुणों के अरे होते हैं। फिर ये तीन अरों वाला पहिया पहले आगे जाता है। फिर दायें और बाएं घूमता जाता है।

वैसे ही जीवन रूपी पहिया भी,

तीन मार्गों की तरह घूम जाता है।

ये तीन मार्ग हैं सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।

ये तीन मार्गों का चक्र भी दो कारणों से निरन्तर होता रहता है गतिमय।

वे दो कारण हैं प्राणी के

शुभ और अशुभ कर्म

शुभ कर्मों के कारण मिलता है सुख। अशुभ कर्मों के कारण मिलता है दु:ख।।

ऋषि जी आगे समझाते हैं कि-

सृष्टि चक्र चलने का

मोह ही है मुख्य कारण।

इस मोह के कारण ही सुखों-दु:खों को करना पड़ता है धारण।।

इन सब शुभ-अशुभ फलों की

व्यवस्था करता है सर्वशक्तिमान्।

भाग्य-काल-पंचमहाभूत-जीवात्मादि सृष्टि की उत्पत्ति की व्यवस्था का। और कोई भी नहीं कर सकता गतिमान्। यह थी ब्रह्म द्वारा सृष्टि को एक चक्र की तरह चलाने की

एक अनुपम कहानी।

ब्रह्म के अतिरिक्त कोई भी,

प्राणी इस सृष्टि चक्र को चलाने की नहीं कर सकता मनमानी।।

ब्रह्माण्ड में ब्रह्म चक्र की कल्पना के वर्णन के बाद ऋषि जी समझाते हैं कि-

यदि ब्रह्माण्ड ब्रह्म चक्र के समान है तो पिण्ड एक नदी के समान है। अर्थात् शरीर भी एक नदी के समान ही गतिशील होता रहता है।

ऋषि जी कहते हैं कि-

यह शरीर है एक नदी के समान।

क्योंकि नदी के उतार-चढ़ाव की तरह हमारे जीवन में उठते रहते हैं तूफान।

जैसे नदी का जल पांच स्रोतों से

निकल कर आगे-आगे बहता रहता है, वैसे ही शरीर की पांच ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान हमारी आत्मिक शक्ति को बढ़ाता है।

जैसे नदी के स्रोत के कारण है

ऊँचे-ऊँचे सुन्दर-सुन्दर पहाड़।

वैसे ही इस सुन्दर-सुन्दर शरीर के निर्माण का भी पंचमहाभूत है आधार। जैसे नदी की गति कहीं तेज,

कहीं मध्यम, कहीं शान्त हो जाती है। वैसे ही मानव जीवन की प्रवृतियाँ भी कभी दु:खी, कभी उदास और

कभी आशावादी हो जाती हैं।

जैसे नदी में आते रहते हैं

उतार-चढ़ाव और भँवर,

वैसे ही जीवन में शब्द रूप रसादि से भी विषय वासनाओं में डूबाने वाले उठते रहते हैं भँवर।

जैसे नदी में कभी-कभी आ जाते हैं भंयकर बाढ, ज्वार या तुफान,

वैसे ही जीवन में भी अहंकार-रागद्वेष आधि-व्याधि-जन्म मरण के आ जाते हैं तूफान।

परन्तु जो प्राणी अपने बल बुद्धि व ज्ञान के सहयोग से इन तूफानों को कर लेता है संयम से पार।

फिर उसे इस संसार में नहीं

लेना पड़ता जन्म बारम्बार।।

इस जीवन रूपी नैया को पार करने के लिये अविद्या-राग-द्वेष-

(शेष पृष्ठ 7 पर)

ओ३म्

ले.-धर्मपाल कपूर 1135, सैक्टर 11, पंचकूला

(गतांक से आगे)

इस प्रकार हम देखते हैं कि ओ३म् ईश्वर का सर्वोत्तम नाम है। इसमें ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप एवं गुणों का उल्लेख है। ऐसा सम्पूर्ण एवं उत्तम परमेश्वर का अन्य कोई नाम नहीं है। ओ३म् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नहीं है। 'अ', 'उ' एवं 'म्' इन तीनों अक्षरों से ओ३म् शब्द की सिद्धि होती है। 'अ' स्वर सर्वशक्तिमान है, क्योंकि यह दूसरे अक्षरों की सहायता के बिना ही बोला जा सकता है परन्तु कोई भी स्वरहीन व्यंजन नहीं बोला जा सकता। जहाँ स्वर किसी अन्य की सहायता के बिना स्वयं प्रकट होता है वहाँ सारे के सारे व्यंजनों के प्रकट होने का मूल कारण भी है। इन सबका जीवन एवं प्रकाशक अ (परमेश्वर) सर्वशक्तिमान है। वह स्वयं प्रकाशित है तथा व्यंजन में स्वर की भाँति वस्तुमात्र में ओतप्रोत होकर उसे जीवन तत्त्व एवं प्रकाश दे रहा है। ओ३म् सर्वज्ञ है। मानव का सारा ज्ञान, सारे विचार शब्दों में पिरोए हुए है। हम किसी भी वस्तु का ध्यान एवं विचार शब्दों के द्वारा ही करते हैं। इस कारण हमारे मन एवं बुद्धि शब्द क्षेत्र के भीतर यहीं रहते हैं। जो शब्द मानुषी ज्ञान का आधार है उसकी रचना अक्षरों के संयोग से होती है। जो अक्षर मिलकर ज्ञान के आधार शब्दों को जन्म देते हैं, उन सबमें आदिम अक्षर एवं अपने से भिन्न सब अक्षरों का प्रकाशक अक्षर 'अ' है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'अ' आदिम अक्षर है। अन्य सब अक्षरों में 'अ' है। अक्षरों में शब्द हैं और शब्दों में ज्ञान है। यदि अ न हो तो अन्य कोई भी अक्षर न हो। इस प्रकार शब्द मात्र का अभाव हो जायेगा। अतः समूचे अक्षरों एवं शब्दों के प्रकाशक 'अ' ही में सर्वज्ञान है। 'अ' जहाँ वर्णमाला में वर्ण है वहाँ ओ३म् का भी भाग है। 'अ' की ध्वनि कंठ से निकलती है। शेष वर्णों की ध्वनि का स्थान भी कंठ है। परन्तु जब तक इनके साथ स्वर न हो तो वर्ण बोले नहीं जा सकते। अतः विद्वान् व्यक्तियों का विचार है कि सब ज्ञानों, ध्वनियों सब स्वरों का आदि मूल 'अ' परमेश्वर है।

ओ३म् जगत् का आदि, मध्य और अंत है। ध्वनि का आदि कंठ 'अ' से है, मध्य होठों में एवं अंत नाक में है। आदि का प्रतिनिधि 'अ' है, सर्वथा होठों में बोला जाने वाला मध्य का प्रतिनिधि 'उ' है। पाँच वर्गों में पवर्ग अन्तिम वर्ग है। इसके अन्त में 'म्' है। पाँच वर्गों के ङ्, ञ्, ण्, न् तथा म् ये पाँच सानुनासिक वर्ण हैं। इन सब के अंत में सानुनासिक म् है। होठों को बंद करके नाक में ध्वनि गुंजाई जाए तो वह पूर्णतः नाक की ध्वनि होगी। इस प्रकार वह ध्वनि अंतिम होगी। उससे आगे कोई भी ध्वनि गुंजाई नहीं जा सकती। वैसे ही ध्वनि म् की है। अतः पूर्णता से अंत का प्रतिनिधि म् है।

अ, उ, म् से ओ३म् का प्रकाशन होता है। जैसे ध्वनि की उत्पत्ति अ से है, उसी प्रकार सृष्टि-उद्गम भी 'अ' परमेश्वर से है। जैसे ध्वनि के मध्य का प्रतिनिधि उ है, इसी प्रकार सृष्टि के मध्य में इसका पालन पोषणकर्ता उ (परमेश्वर) है। जिस प्रकार ध्वनि की पूर्णता म् वर्ण में होती है, उसी प्रकार सृष्टि का अंत भी म् (परमेश्वर) में है। ओ३म् सर्वान्तर्यामी और सबका जीवन है। जो भी वर्ण उच्चारण कीजिए, उसमें 'अ' की ध्वनि अवश्यमेव होगी। जैसे कंठ की ध्वनि जीभ की ध्वनि में रमी हुई है एवं समस्त ध्वनियों का आधार है। ऐसे ही अ भी समस्त वर्णों में रमा हुआ है। इसी प्रकार ओ३म् भी समग्र पदार्थों का आधार एवं जीवन है। सारी सत्तायें परतन्त्र हैं और ओ३म् के आधीन हैं। वह सबका अंतरात्मा है। वस्तुतः सारे प्राणियों का परमात्मा एक ही है। परन्तु अपनी श्रद्धा एवं विश्वास के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों ने इसे विभिन्न नामों से पुकारा है। जैसे-

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।

-ऋग्वेद 1.164.46

उस एक ही परमात्मा को विद्वान् व्यक्ति अनेक नामों से पुकारते हैं। जैसे-

वह एक ही परमेश्वर सृष्टि का उत्पादन, पालन और संहार करता है। उसी के ब्रह्मा, विष्णु और महेश नाम हैं।-विष्णुपुराण

इसी कारण स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने अपनी पुस्तक 'Bliss Divine' में ओ३म् की महत्ता पर इस प्रकार प्रकाश डाला है-

Om is verily Brahman, Om is Satchitananda, Om is infinity, Om is eternity, Om is immortality-P. 409

वस्तुतः ओ३म् ब्रह्म, सच्चिदानंद, अपार, अजर एवं अमर है। ओ३म् शब्द को अनेक प्रकार से लिखा जाता है। जैसे-

1. ओ+म् = ओं-इसको ह्रस्व उच्चारण के नाम से पुकारा जाता है। यह पाप नाशक है।

2. अ+ऊ+म्= ओम्-इसको दीर्घ उच्चारण कहा जाता है। इससे अक्षय सम्पत्ति प्राप्त होती है।

3. ओ+३+म्-इसको प्लुत उच्चारण कहा जाता है। इससे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

4. ॐ यह अर्धमात्रा सहित उच्चारण है। इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

5. अकार+उकार+हलंतः मकार-ओंकार अकार ध्वनि मूलाधार से उठकर नाभि से मणिपुर चक्र में से अनाहत चक्र तक व्याप्त होकर ब्रह्म ग्रंथि का भेदन करती है। उकार ध्वनि नाभि में ऊपर हृदय से विशुद्ध चक्र तक व्याप्त होकर ग्रंथि का भेदन करती है। मकार ध्वनि कंठ देश से आज्ञा चक्र तक व्याप्त होकर रुद्र ग्रंथि का भेदन करती है। अतः किसी कवि ने ओम् महिमा के विषय में लिखा है-

ओ३म् नाम ऋषियों को प्यारा
सबको सबसे श्रेष्ठ सहारा।
ओ३म् नाम का सौदा कर ले,
कभी न होगी हानि।।

इस प्रकार ऊपर लिखित विशद् विवेचन के उपरांत हम देखते हैं कि अ+उ+म्-इन तीन वर्णों से ओ३म् शब्द का निर्माण हुआ है। ये तीनों वर्ण स्वर हैं। जो कि बिना व्यंजनों की सहायता के बोले जाते हैं। अब तीनों वर्णों का विवेचन 'सत्यार्थप्रकाश' में महर्षि दयानन्द द्वारा इस प्रकार किया गया है।

1. विराट (वि+राट्=प्रकाशक) अग्नि, विश्व आदि।

2. हिरण्यगर्भ (हिरण्य+गर्भ)= वायु, तेज आदि।

3. मकार (ज्योति+आश्रय) ईश्वर, आदित्य, प्रज्ञा आदि।

सभी आर्ष ग्रंथों के मंत्रों एवं श्लोकों का उच्चारण भी ओ३म् से किया जाता है। विभिन्न धार्मिक ग्रंथों में ओ३म् के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं। सर्वप्रथम चार वेदों के विभिन्न 20516 मंत्रों में केवल यजुर्वेद में निम्नलिखित तीन स्थानों पर प्रभु के सर्वश्रेष्ठ ओ३म् का नाम प्रयोग हुआ है।-

1. ओ३म् प्रतिष्ठ। (ओ३म् में समाहित हो)-यजुर्वेद 2.13

2. ओ३म् क्रतो स्मर। (हे कर्मशील मानव! तू ओ३म् का उच्चारण कर)।-यजुर्वेद 40.15

3. ओ३म् खं ब्रह्म (ओ३म् आकाशवत् व्यापक होने से और सबसे बड़ा होने से ईश्वर का नाम है)-यजुर्वेद 40.17

अतः ओ३म् का जाप स्मरण शक्ति को तीव्र करता है। इसलिये वेदाध्ययन में कुछ मंत्रों के आदि एवं अंत में ओ३म् का प्रयोग किया जाता है। मनुस्मृति में आया है-ब्रह्मचारी को मंत्रों के आदि एवं अंत में ओ३म् शब्द का उच्चारण करना चाहिए, क्योंकि आदि में ओ३म् शब्द का उच्चारण न करने से अध्ययन धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है तथा अंत में ओ३म् शब्द न कहने से वह स्थिर नहीं रहता। स्वामी शिवानंद ने अपनी पुस्तक 'Bliss Divine' में लिखा है-

The essence of the four Vedas is Om only. He who chats or repeats OM really repeats the sacred books of the whole world. –P-411.

केवल ओ३म् ही चारों वेदों का सार है। जो भी कोई ओ३म् का गीत गाता है, वस्तुतः वह समग्र संसार के पवित्र ग्रंथों का पाठ करता है।

इसके उपरांत विभिन्न उपनिषदों का अनुशीलन करने के उपरांत प्रतीत होता है कि इनमें भी ओ३म् की महिमा का गुणगान किया गया है। जैसे मुण्डकोपनिषद् में लिखा है-

प्रणवो धनुः शरो हयात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।

अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

(क्रमशः)

आत्म-बोध

ले.-कुसुम अग्रवाल बी-8, पेपर मिल कालोनी यमुनानगर (हरियाणा)

मेरे मन में 60 वर्षों तक कुंठा बनी रही। उस कुंठा का कारण अविद्या थी और उसके मूल में थी एक सीधी सादी महिला के प्रति ईर्ष्या। उसका नाम मीना था, जो बचपन में मेरे साथ खेलती थी। वह एक मध्यवर्गीय परिवार की इकलौती संतान थी। इकलौती होने के कारण उसे माता-पिता से बहुत लाड़ प्यार मिलता था। उसे प्राय: कीमती खिलौने और सुन्दर-सुन्दर फ्राकें मिलती रहती। वह तुरन्त उन्हें दिखाने मेरे पास आती क्योंकि मेरे अतिरिक्त उसका अन्य कोई संगी साथी नहीं था। हम 8 बहन भाई थे। इसलिये मुझे ऐसी वस्तुएं प्राप्त नहीं होती थी। अत: मैं उससे ईर्ष्या करती थी। यदि यह ईर्ष्या बचपन तक सीमित रहती तो बड़ी बात नहीं थी। पर इस ईर्ष्या को तो तब तक हवा लगती रही जब तक 10 वर्ष पूर्व मधुमेह रोग से उसकी मृत्यु न हो गई।

हुआ यूँ कि मीना 14 वर्ष की अवस्था तक पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाई तो उसके माता पिता ने उसी नगर के निवासी मध्यवर्गीय परिवार के अर्धशिक्षित युवक से उसका विवाह कर दिया तथा अपनी समस्त चल अचल सम्पत्ति उसके नाम कर दी। युवक ने उस धन से लकड़ी के व्यापार में इतना धन कमा लिया कि दस वर्ष बीतते बीतते उसकी गिनती नगर के गिने चुने उद्योगपतियों में होने लगी। संयोगवश शिक्षा प्राप्त करके मैं भी इसी नगर में बस गई तथा सरकारी सेवा में आ गई। मेरी ईर्ष्या का कारण यह था कि मेरे सम्बन्धियों या पड़ोसियों के यहाँ जब भी कोई छोटा-मोटा उत्सव होता, हम दोनों ही वहां आमन्त्रित होते। उसकी 20-25 लाख मूल्य की गाड़ी घर के बाहर खड़ी होती। सब लोग उसके नाज नखरे उठाते। वह भी स्वयं के लिए 'हम' शब्द प्रयोग करके लखनऊ के नवाबों के स्टाइल में बात करती। मैं स्वयं को अपमानित और उपेक्षित महसूस करती। आगे पीछे दूसरों से कहती-देखो, इस मीना की किस्मत?

लगभग 3-4 माह पूर्व मेरी एक लम्बी तथा कठिन सर्जरी हुई। सर्जरी के पश्चात् कुछ घंटों के लिए मुझे गंभीर देखभाल कक्ष (आई. सी. यू.) में लिटा दिया गया। औषधियों तथा टीकों के नशे के कारण मैं कुछ-कुछ नींद और कुछ-कुछ चैतन्यावस्था में थी। मैंने मन ही मन में ''आपकी अदालत'' का दृश्य कल्पित कर लिया। भगवान की आकृति की भी कल्पना करके उन्हें कटघरे में बिठा दिया, फिर दोनों ओर से स्वयं ही प्रश्नोत्तर आरम्भ कर दिये।

मैं-आप स्वयं को भगवान समझते हैं?

भगवान्-समझता नहीं, मैं भगवान ही हूँ।

मैं-यदि आप भगवान हैं तो कोई चमत्कार दिखाएं।

भगवान्-चमत्कार दिखाने का कार्य तो पाखंडी बाबा लोग करते हैं। मैं तो चमत्कार करता हूँ। जब-जब तुमने रोकर मुझे पुकारा है, तब-तब मैं अदृश्य रूप से तुम्हारे पास ही रहा हूँ। 2 वर्ष की अवस्था में जब तुम चलती ट्रेन से नीचे गिर गई थी। तब मैं ट्रेन का चालक बन गया था। तुम्हें मामूली खरोंचे ही आई थी। 2 वर्ष पूर्व जब तुम चिलका झील में डूबने लगी थी, तब मैंने ही मांझी के हाथ से नौका की डांड लेकर तुम्हें किनारे लगाया था। अब जब तुम्हारा शरीर निर्जीव की भांति आपरेशन थियेटर में पड़ा था, तब मैंने तुम्हें अपनी बाहों में लिया था।

मैं-पर भगवान् जी, आपका न्याय मेरी समझ में नहीं आया। उस मीना को माता-पिता का पूरा प्यार-दुलार मिला, उसमें ऐसा क्या था?

भगवान्-उसमें ऐसा कुछ भी नहीं था। उसके माता पिता तो 40 वर्ष पूर्व दिवगंत हो चुके थे। उसके मायके में प्यार करने वाला कोई नहीं रहा।

मैं-पर भगवान् जी, सामाजिक समारोहों में उसे कितना सम्मान मिलता है, जो मुझे नहीं मिलता। उसे पहली पंक्ति में बिठाया जाता है, मुझे पांचवीं/सातवीं में।

भगवान्-मीना का तुम्हारे अतिरिक्त कोई नाम भी नहीं जानता। उसकी स्वयं की कोई पहचान नहीं है। मीना को नहीं, यह सम्मान तो उद्योगपति मित्तल की पत्नी को मिल रहा है।

मैं-चलो भगवान् जी, मैंने आपकी यह बात तो मान ली, पर उसके पास इतनी बड़ी गाड़ियां और कई भव्य कोठियां भी तो हैं। मैं 30 वर्ष ग्रामीण क्षेत्रों में पांव घिसाती रही, मेरे पास तो कोई सस्ती सी गाड़ी भी नहीं है, न ही कोई भव्य कोठी।

भगवान्-मीना के घुटने खराब हैं उसे गाड़ी की आवश्यकता है, तुम्हें नहीं। देखो, अमेरिका का प्रधानमंत्री भी एक ही नगर में रहता है। उस नगर के एक ही महल में रहता है। महल के एक ही कमरे में उसका निवास है। उस कमरे के एक ही बेड के आधे ही हिस्से में सोता है, इतना तो तुम्हें भी प्राप्त है ही।

मैं-पर भगवान् जी, मीना के तो 4 युवा पुत्र और 8 पौत्र हैं। वह इतने भरे-पूरे परिवार में कितनी सुखी है।

भगवान्-ढेर सारे पुत्र/पौत्र, ढेर सारे सुख का साधन नहीं होते। शाहजहाँ के भी चार पुत्र और ढेरों पौत्र थे। उसके विषय में क्या सोचती हो?

मैं-भगवान् जी, आपके तर्क अकाट्य हैं, पर इतना तो बता दीजिये कि क्या पिछले जन्मों में मीना ने ही बहुत से शुभ कर्म किये थे, मैंने कोई भी शुभ कर्म नहीं किया था?

भगवान्-मीना ने पिछले जन्म में परोपकार के कार्यों में बहुत दान किया था, पर तुमने तो बहुत अच्छा कार्य किया था। तुमने निर्धन छात्रों को विद्या का दान दिया था। मैंने तुम्हारे लिये श्रेय मार्ग चुना था परन्तु तुम पूरी आयु वित्तैषणा, पुत्रैषणा तथा लोकैषणा के प्रेय मार्ग में ही भटकती रही हो। तुम्हारी आयु पूर्ण हो चुकी है। अब जो जीवन तुम्हें दिया जा रहा है उसे दूसरों के लिये समझ कर निष्काम कर्म करो। यही मार्ग शुभ है। जिस दिन तुम यह सोचने लगोगी कि तुम किसी के लिये कुछ नहीं कर सकती, उसी दिन यह भी सोच लेना कि वह तुम्हारे जीवन का अन्तिम दिन होगा।

मेरे 'हाँ' कहते ही मेरी आँख खुल गई। मेरा पुत्र कहने लगा-माता जी, आपको होश तो बहुत देर से आ चुका था पर आप जानबूझ कर आँख बन्द किये लेटी रही। मैंने कहा-नहीं बेटे! मुझे तो अभी पूरी तरह होश आया है।

पृष्ठ 2 का शेष-मनुष्य की मृत्य व जन्म के बीच...

विषयी ज्ञाता बनकर तथा जीवन का प्रयोजन जानकर) के अनुरूप कर्म करके, श्रवण चतुष्टय (अर्थात् श्रवण-मनन-निदिध्यासन-साक्षात्कार) में प्रवीणता प्राप्त कर लेता है, तब वह मुक्ति का अधिकारी होता है।

वेद के अनुसार प्रत्येक जीवात्मा सुकृत (शुभकर्मों द्वारा), मनायु (मननशील), सुप्रावी (सुन्दर और प्रभावशाली वचन बोलने वाला) और सोमी (स्थितप्रज्ञ एवं सौम्य) होकर परमपिता परमात्मा का प्रिय पात्र हो जाता है। देखिये ऋग्वेद का यह मन्त्र इस प्रकार है:-

''न तं जिनन्ति बहवो न दभ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत्।
प्रियः सुकृत् प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी।।'' (ऋ. 4/25/5)

अर्थात्

जो याजक इन्द्रदेव के निमित्त सोम निचोड़ते हैं, वे शत्रुओं द्वारा पीड़ित नहीं होते। उन याजकों को माता अदिति अत्यधिक हर्ष प्रदान करती है। इन्द्रदेव के निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले, यज्ञ करने वाले, सन्मार्ग पर गमन करने वाले तथा सोम यज्ञ करने वाले याजक उनके स्नेही (प्रिय पात्र) बनते हैं। मन्त्र के ऋषि वामदेव गौतम, देवता-इन्द्र और छन्द-त्रिष्टुप है। मन्त्र में इन्द्रदेव परमात्मा के द्योतक हैं।

पुण्यकर्म करने वाले जीवात्मा को मुक्ति (मोक्ष) का मार्ग प्रशस्त करने के लिए, कृपासिन्धु परमेश्वर, जीवात्मा के शरीर छोड़ने के उपरान्त, किन्तु पुनर्जन्म प्राप्त करने से पूर्व निम्नांकित 12 से सम्पर्क करा देता है, जिससे इनकी संगति में आकर, वह उन गुणों को धारण कर सके और आगामी जन्म में आकर वे उसकी मुक्ति की प्राप्ति में सहायक बन सकें:-

सविता-रचनात्मकता एवं उत्पादकता
अग्नि-अग्रणीयता एवं तेजस्विता
वायु-गतिशीलता
आदित्य-कर्मठता एवं प्रकाशयिता
चन्द्रमा-सौम्यता, शीतलता एवं दर्शनीयता
ऋतु-परिवर्तन शीलता
मरुत-वीरता, बल एवं शौर्यता
बृहस्पति-विशालता एवं महानता
मित्र-सख्यता एवं स्नेहशीलता
वरुण-वरणीयता एवं बद्धता
इन्द्र-ऐश्वर्यता एवं जितेन्द्रियता
विश्वेदेवा-सम्पूर्ण दिव्यता

इस मिलनार्थ भ्रमण में जीवात्मा के भटकने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि इसका संचालन स्वयं परमपिता परमेश्वर करते हैं। इस भ्रमण की परिसीमादि पर जीवात्मा अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त होकर, नया शरीर धारण करके, पुनर्जन्म ले लेता है। यजुर्वेद के उपर्युक्त मन्त्र का वास्तविक भाव यही है।

पृष्ठ 4 का शेष-सत्य से प्रभु की प्राप्ति

अहंकारादि बाधाओं को दूर करने का निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। नहीं तो यह भी हो सकता है कि जो अविद्या रागद्वेषादि को दूर न कर सके तो उसे बार-बार जन्म लेना पड़ता है, क्योंकि अधिकतर लोग भौतिक सुख को ही जीवन का आनन्द समझ लेते हैं और फिर इन्द्रियों के सुखों को प्राप्त करने के लिये भटकते रहते हैं। परन्तु जब कुछ पुण्यात्माएँ आत्मज्ञान की शक्ति से अविद्या व अज्ञानता से दूर हो जाते हैं, तो मोह ममता से छूट कर प्रभु की भक्ति में लीन हो जाते हैं।

जैसे सारी नदियां आरम्भ में कूदती फांदती हुई, बहती-बहती अन्त में सागर में मिल कर अपनी पहचान भूल जाती हैं। वैसे ही हम सब को एक ना एक दिन अपने सभी सगे सम्बन्धियों को छोड़ कर फिर ब्रह्म में ही समा जाना है। इस तरह श्वेत ऋषि ने समझाया है कि हमारा शरीर भी नदी की तरह गतिशील होता रहता है।

अब हम ऋषि जी से ईश्वर-जीव और प्रकृति के क्षर और अक्षर रूप का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

ऋषि जी बताते हैं कि जो ब्रह्म ईश्वर-जीव और प्रकृति-इन तीनों के भेद को जान लेता है तो वह जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

सृष्टि में तीन तत्व हैं-ईश्वर, जीव, प्रकृति। इनमें से प्रकृति क्षर भी है और अक्षर भी है। अर्थात् नष्ट होने वाली दिखाई देती है परन्तु यह नष्ट नहीं होती। इसका रूप अवश्य बदलता रहता है। इसलिये प्रकृति अक्षर भी कहलाती है।

प्रकृति के बाद जीवात्मा के विषय में बताया है कि जीवात्मा विषयों के भोगों में पड़ कर सुख-दु:ख को भोगता हुआ सांसारिक बन्धनों में फंस जाता है, यही उसका बन्धन है। फिर जब वह इन बन्धनों को तोड़ कर ईश्वर के सत्य-ज्ञान और अनन्त सत्ता को पहचान लेता है तो वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है अर्थात् अविद्यादि क्लेशों से छूट जाता है।

अब तक जीवात्मा मोहमाया में बंधा हुआ था, परन्तु अब बन्धनों से दूर हट कर अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान जाता है, साथ ही वह समझ जाता है कि ब्रह्म कहीं दूर नहीं है, वह सदा ही हमारे पास विद्यमान है। मन में ऐसी दिव्य भावना उठने पर वह प्रभु से विनय करता है कि-

प्रभु! मेरे जीवन को कुन्दन बना दो
कोई खोट इसमें रहने न पाए।
करो मेरे जीवन में ऐसा उजाला
हर श्वास हो तेरे चिन्तन की माला।।

इस तरह जीवात्मा प्रभु को अपने पास विद्यमान पाकर अपने जीवन को कुन्दन की तरह शुद्ध बनाने की बार-बार प्रार्थना करता रहता है। जीवात्मा के बाद ऋषि जी ईश्वर के विषय में बताते हैं कि परमात्मा सर्वज्ञ है, प्रकृति का भोग नहीं करता-वह तो प्रकृति से संसार का निर्माण करता है-पालन करता है और सबको पल-पल प्रेरणा देता है।

जीवात्मा भोगों को भोगने के कारण भोक्ता कहलाता है। प्रकृति का भोग जीवात्मा करता है, इसलिये प्रकृति को भोग्या कहा जाता है। इस भोक्ता-भोग्या और प्रेरणा देने वाले ब्रह्म का वर्णन करके श्वेत ऋषि जी ने त्रैतवाद सिद्धान्त को सिद्ध किया है।

इसके पश्चात् ऋषि जी समझाते हैं कि-

ब्रह्म सब जगह है, उसका थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लेना भी सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के समान है। जैसे:-

सागर की एक बूंद से सागर के पानी के स्वाद का भान हो जाता है, वैसे ही अन्तस् के भीतर विद्यमान परमात्मा के दर्शन करने का अभ्यास करते रहने की जानकारी हो जाती है। जैसे:-

तिलों में तेल-दूध में घृत विद्यमान होता है, वैसे ही परमात्मा को भी हृदय में अनुभव किया जा सकता है। वह परमात्मा विश्वकर्मा है। सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है।

कहते हैं-

जब हृदय में उसकी चाह हो,
बुद्धि द्वारा उसकी खोज हो
मन में उसका ध्यान हो
तब ब्रह्म की परिभाषा समझ में आ सकती है। ऋषि जी आगे समझाते हैं कि इस अवस्था तक पहुंचने के लिये तप और सत्य की शक्ति चाहिए, अर्थात् परमात्मा तप और सत्य के व्यवहार द्वारा दिखाई देता है। तभी तो ऋषि-मुनि गा-गा कर समझाते हैं कि-

करो सत्य से प्यार प्रभु मिल जाएगा,
बना लो सत्य आधार प्रभु मिल जाएगा।
सत्य स्वरुप प्रभु का प्यारा
जिसने सत्य जीवन में धारा
जीवन हो उजियारा, प्रभु मिल जाएगा।

इस तरह ऋषि जी उपदेश देते हैं कि प्रभु को पाने के लिये जीवन में सत्य का पालन करें और दूसरों को सत्य ही प्रवचन करें। सत्य का पालन करना एक प्रकार का तप है। क्योंकि सत्य का उल्लंघन करने से जीवन में अनेक प्रकार के प्रलोभनों का शिकार होना पड़ता है। इस प्रकार के प्रलोभनों में न पड़ना भी तप ही है क्योंकि तप और सत्य के पथ पर चलने से ही प्राप्त होती है शक्ति-भक्ति। फिर शक्ति-भक्ति से ही आत्मा को मिलती रहती है प्रभु की अलौकिक शक्ति।।

शोक समाचार

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के कोषाध्यक्ष, आर्य समाज पंजाबी बाग पूर्वी के प्रधान तथा आर्य समाज अलावलपुर (जालन्धर) पंजाब के संरक्षक श्री बलदेव राज जिंदल का 12 मई 2021 को देहान्त हो गया। श्री बलदेव राज जिंदल कई डी.ए.वी. संस्थाओं के प्रधान/ मैनेजर रहे। उन्होंने अपना पूरा जीवन समाज सेवा के लिए समर्पित किया हुआ था। वे आर्य समाज अलावलपुर जालन्धर के कई वर्षों तक संरक्षक थे। उनका पूरा जिंदल परिवार इस समाज की सेवा कर रहा हैं। कई वर्षों तक उन्होंने आर्य संस्थाओं की सेवा की। पिछले वर्ष दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री श्री विनय आर्य जी ने उनके द्वारा दी गई उत्कृष्ट सेवाओं के लिए उनके घर जाकर सम्मानित किया था। ऐसी नेक विचारों की विभूति का इस संसार से जाना सम्पूर्ण समाज के लिए अपूरणीय क्षति है।

श्री बलदेव राज जिंदल जी के निधन से दो दिन पूर्व 10 मई 2021 को उनके सुपुत्र श्री राजीव जिंदल जी का कोरोना के कारण असामयिक निधन हो गया था। परिवार के लिए यह किसी वज्रपात से कम नहीं था। श्री राजीव जिंदल का स्वभाव बहुत ही मिलनसार था, वे मृदुभाषी थे। श्री राजीव जिंदल भी अपने पिता के पदचिह्नों पर चलते हुए समाज सेवा के कार्य कर रहे थे। उनके निधन से परिवार तथा समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब इन दोनों महानुभावों के निधन पर गहरा दु:ख व्यक्त करती है और सभी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वे इन पवित्र आत्माओं को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें। परिवार को इस असहनीय दुख को सहन करने की धैर्य शक्ति प्रदान करें। दुख की इस घड़ी में हम सभी शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

प्रेम कुमार
सभा महामन्त्री

शोक समाचार

लुधियाना के प्रतिष्ठित आर्य समाजी मल्होत्रा परिवार के मुखिया श्री अयोध्या प्रसाद जी मल्होत्रा का गत दिनों देहावसान हो गया। श्री अयोध्या प्रसाद मल्होत्रा एक समर्पित आर्य समाजी थे जिन्होंने जीवन पर्यन्त आर्य समाज की तन, मन, धन से सेवा की। यज्ञ पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। उनमें सेवा भाव बहुत था और वह सरल रहन सहन रखते थे। लुधियाना की प्रत्येक आर्य समाजों के कार्यक्रमों में वह नियमित रूप से भाग लेते थे। सत्संग के प्रति उनकी बहुत रूचि थी। वह आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तरंग सदस्य भी रहे। श्री मल्होत्रा जी ने आर्य समाज महर्षि दयानन्द बाजार (दाल बाजार) लुधियाना में भिन्न भिन्न पदों पर रह कर बड़ी तन्मयता से आर्य समाज का कार्य किया। उनका अन्तिम संस्कार वैदिक रीति से किया गया। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को उनके द्वारा किए गए सत्कर्मों के अनुसार सद्गति प्रदान करें तथा शोक संतप्त परिवार को इस दुख को सहन करने की धैर्य शक्ति प्रदान करें। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं जिला आर्य सभा लुधियाना दुख की इस घड़ी में शोक संतप्त परिवार के साथ हैं।

श्रीमती राजेश शर्मा लुधियाना

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आह्वान पर 3 मई 2021 को अन्तर्राष्ट्रीय यज्ञ दिवस के अवसर पर हर घर यज्ञ, घर घर यज्ञ योजना के अन्तर्गत वैश्विक महामारी कोरोना से मुक्ति की कामना करते हुए रोग निवारण यज्ञ का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री विजय आर्य राजपुरा, श्री वेद आर्य जालन्धर, श्री सोहन लाल सेठ जालन्धर, श्री कमलेश शास्त्री फरीदकोट, श्री कैलाश नाथ भारद्वाज फगवाडा, श्रीमती ज्योति नन्दा गुरदासपुर, आर्य समाज फाजिल्का के सदस्य, आर्य समाज जीरा के सदस्य अपने-अपने परिवार के साथ यज्ञ करते हुए।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**